जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

गलती सदा ज्ञान या वाणी में होती है, वस्तु में नहीं।

– बिन्दु में सिन्धु, पृष्ठ – 33

वर्ष : 26, अंक : 4 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
मई (द्वितीय) 2003 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25/-, एकप्रति : 2/-

राजस्थान के नये राज्यपाल : श्री निर्मलचन्दजी जैन जबलपुर

जबलपुर दिगम्बर जैनसमाज के गौरव श्री निर्मलचन्दजी जैन को केन्द्र सरकार द्वारा राजस्थान प्रदेश का राज्यपाल मनोनीत किया गया। आपके महामहिम राज्यपाल पद पर आसीन होने से समस्त राजस्थानवासी हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। ज्ञातव्य है कि आप भारत वर्ष के प्रथम दिगम्बर जैन राज्यपाल हैं; अत: भारतवर्षीय दिगम्बर जैनसमाज हार्दिक प्रसन्नता को महसूस करते हुये अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रही है।

जबलपुर (म.प्र.) के प्रतिष्ठित भारिल्ल परिवार में जन्मे एडवोकेट श्री निर्मलचन्दजी जैन बचपन से ही तीक्ष्ण प्रज्ञा के धनी थे। आपने स्नातकोत्तर परीक्षा पास करने के बाद एल. एल. बी. की डिग्री प्राप्त करके अपने शैक्षणिक भविष्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की।

प्रारंभ से ही धर्मनिष्ठ और सेवा भावना से ओतप्रोत श्री जैन आर. एस. एस. के कार्यकर्ताओं में सदैव अग्रणी भूमिका निभाते रहे। आपात काल में आपको मीसा के तहत गिरफ्तार किया गया तथा आप टीकमगढ़ व सागर के जेल में भी रहे।

सन् 1977 के चुनाव में आप जनता पार्टी के टिकिट से खड़े हुये तथा भारी बहुमत से विजयी होकर सांसद बने। फिर श्री सुन्दरलाल पटवा के शासनकाल में आपको 1990 से 92 तक मध्यप्रदेश का महाधिवक्ता बनाया गया। 1998 से 2000 तक आप केन्द्रीय वित्त आयोग के सदस्य रहे।

ज्ञातव्य है कि सन् 1977 में जब श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर का उद्घाटन तात्कालिक मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंहजी शेखावतजी के करकमलों से किया गया था, तब श्री जैन विशिष्ट अतिथि के रूप में टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर पधारे थे।

आप सुप्रसिद्ध समाजसेवी, धर्मनिष्ठ, जैनसमाज की अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं।

आपकी इस गौरवमयी उपलब्धि पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं जैनपथ प्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

बाल संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

औरंगाबाद (गारखेड़ा): महाराष्ट्र की औद्योगिक नगरी औरंगाबाद में प्रथमबार दिनांक 26 अप्रैल से 2 मई 03 तक बाल संस्कार शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के दोनों समय जिनधर्म प्रवेशिका पर एवं दोपहर में गुणस्थान विवेचन पर सरस एवं प्रभावी शैली में प्रवचन हुए।

इस अवसर पर पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी के प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित गुलाबचंदजी बोरालकर एलोरा, पण्डित प्रदीपजी माद्रव एलोरा एवं पण्डित संजयजी राऊत के प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ।

शिविर में 8 से 18 वर्ष तक के 196 बालक-बालिकाओं की बालबोध भाग-1, 2, 3 एवं छहढाला की कक्षायें पण्डित रीतेशकुमारजी शास्त्री सनावद, पण्डित अमोल संघई कात्नेश्वर, पण्डित जितेन्द्र राठी पारशिवनी, पण्डित प्रशांत मोहरे सोलापुर, पण्डित संतोष सावजी अंबड़ एवं पण्डित दीपकजी डांगे ने ली।

इस शिविर की सफलताओं में अनेक बालक-बालिकाओं ने कण्ठपाठ में भाग लेकर छहढाला, कुन्दकुन्द शतक, जिनधर्म-प्रवेशिका आदि अनेक ग्रन्थ सुनाये; जिन्हें हजारों रूपये के पुरस्कार भी दिये गये।

इस अवसर पर लगभग 18 हजार रूपये का सत्साहित्य एवं कैसिटें घर-घर पहुँची एवं वीतराग-विज्ञान मराठी के अनेक सदस्य बने।

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

30

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

उदार चरित्र, अत्यन्त लोकप्रिय यदुवंशियों में शिरोमणि वसुदेव ने विद्याधरों के कुल में उत्पन्न, बड़े-बड़े राजाओं की विभूति को तिरस्कृत करनेवाले वैभव सम्पन्न चारुदत्त को देख उनसे पूछा ह्न हे पूज्य ! आपके भाग्य और पुरुषार्थ को सूचित करने वाली ये सम्पदायें आपने किस तरह प्राप्त कीं? तथा यह बताइए कि यह प्रशंसनीय विद्याधरी आपके भवन में निवास करती हुई मेरे कानों में अमृत की वर्षा क्यों कर रही है?

वसुदेव द्वारा इसतरह पूछे जाने पर चारुदत्त बहुत ही प्रसन्न हुआ और आदर के साथ कहने लगा कि हे धीर! मैं तुम्हें अपना पूर्व वृतान्त कहता हूँ।

इसी चम्पापुरी नगरी में वैश्य शिरोमणि अति धनाढ्य भानुदत्त नाम के सेठ रहते थे। उनकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। वे दोनों नव दम्पत्ति सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रतों का पालन करते हुए सुख से रह रहे थे। उन्हें पुत्र प्राप्ति की प्रतीक्षा थी, जिसमें विलम्ब देख एक दिन उन्होंने जिनमन्दिर में विराजे चारण ऋद्धिधारी मुनिराज से पूछा ह्न महाराज ! आप दिव्यज्ञानी है, कृपया हमें यह बतायें कि हमारे पुत्र प्राप्ति का योग है या नहीं ? मुनिराज ने उन्हें आश्वस्त किया कि ह्न तुम्हें शीघ्र ही उत्तम पुत्र की प्राप्ति होगी। और कुछ समय बाद ही मेरे रूप में उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई। उनके द्वारा मेरा 'चारुदत्त' नाम रखा गया तथा मेरे जन्म का मेरे माता-पिता ने बड़ा भारी उत्सव मनाया। ज्यों-ज्यों मैं बड़ा होता गया; मुझे अणुव्रतों की दीक्षा के साथ-साथ अनेक कलाओं में निपुण करने का प्रयास उनके द्वारा किया गया। ज्यों-ज्यों मैं कलाओं में कुशलता प्राप्त करता, त्यों-त्यों माता-पिता और परिजनों का हर्षरूपी सागर वृद्धिंगत होता जाता था। उस समय मेरे पाँच मित्र थे। उनके नाम थे बराह, गोमुख, हरिसिंह, तमोऽन्तक और मरुभूति। ये मुझे बहुत प्रिय थे।

एक बार उन मित्रों के साथ मैं क्रीड़ा करता हुआ रत्नमालिनी नदी के तट पर गया। वहाँ मैंने किनारे पर एक ऐसा स्थान देखा, जहाँ मेरे पहले कोई दम्पत्ति पहुँचा था; परन्तु वहाँ उसे पहुँचने पर रास्ते में उसके पैरों के चिन्ह नहीं उछले थे। इसकारण मुझे किसी के द्वारा विद्याधर दम्पत्ति के अपहरण होने की शंका हुई। मैं और आगे बढ़ा। वहाँ मैंने उस विद्याधर की सूनी रतिशैया देखी। थोड़े और आगे बढ़ने पर एक वन प्रदेश में वृक्ष पर वह विद्याधर बंधा देखा, उसके बन्धन काट कर वृक्ष से छोड़ा तो छूटते वह बिना कुछ बोले उत्तर दिशा में उधर दौड़ा, जहाँ से उसकी पत्नी की रोने की आवाज आ रही थी। थोड़ी ही देर में शत्रु द्वारा हरी गई अपनी पत्नी को वह छुड़ाकर ले आया और बड़े आदर के साथ मुझसे बोला ह्न हे भद्र ! आपने हमारे प्राण बचाये, हम आपके इस उपकार को कभी नहीं भूल सकते हैं। हमें सेवा का अवसर दीजिए ! हम आपके लिए क्या प्रत्युपकार करें?

विद्याधर ने अपना परिचय देते हुए आगे कहा ह्न '' मेरा नाम अमितगति है। शिवमन्दिर नगर निवासी राजा महेन्द्र विक्रम मेरे पिता हैं धूमकेतु और गौरमुण्ड नामक विद्याधर मेरे मित्र हैं। एक बार मैं उन दोनों मित्रों के साथ ह्रीमन्त पर्वत पर आया था। वहाँ एक हिरण्यरोम तापस की सुकुमारिका नाम की अति सुन्दर युवा पुत्री थी। उसे देखते ही उसने मेरा मन हर लिया और मेरे पिता द्वारा उसके पिता से याचना करने पर हम दोनों का विवाह हो गया। मुझे ऐसा लगा कि मेरा मित्र धूमकेतु भी इसे चाहता है। अतः मैं पत्नी की रक्षा में पूर्ण सजग एवं सावधान रहकर धूमकेतु के साथ विहार करता था; परन्तु आज जब हम दोनों (दम्पत्ति) सो रहे थे कि वह मुझे वृक्ष पर कीलित करके मेरी पत्नी सुकुमारिका को हर ले गया। आपने वृक्ष से बंधे मेरे बन्धन काटकर मुझे छुड़ाया और मैं उसी धूमकेतु से अपनी नव विवाहित पत्नि को छुड़ाकर लाया हूँ। यह आपका मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है; अतः आप मुझे सेवा का अवसर अवश्य दें।''

चारुदत्त ने उत्तर में कहा ह्न ''आप मेरे प्रति इतनी कृतज्ञता ज्ञापित कर रहे हैं, बस यही मेरे लिए बहुत बड़ी बात है। हे तात ! यदि आपकी मेरे प्रति उपकार करने की भावना है तो आप मुझे सदा अपने पुत्रवत् समझिये।'' चारुदत्त ने आगे कहा ह्न ''इसप्रकार मेरे कहने पर उन विद्याधर दम्पत्ति ने मुझे अपना पुत्र स्वीकार किया तथा मेरा नाम एवं गोत्र जानकर प्रसन्नता प्रगट की और संकटकाल में मुझे हर तरह से सहयोग देने का संकल्प कर आकाश मार्ग से अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये।

चारुदत्त ने पुन: आगे कहा ह्न

''तरुण होने पर माँ के आग्रह से मैंने अपने मामा की मित्रवती कन्या के साथ विवाह कर तो लिया; किन्तु मुझे शास्त्र स्वाध्याय करने में विशेष रुचि थी, इसकारण अपनी पत्नी में मुझे जरा भी रुचि नहीं थी। इस बात की चिन्ता मेरी माँ को अधिक रहा करती। मेरी माँ चाहती थी कि मैं सांसारिक राग-रंग में रमू। ऐसा न हो कि मैं मुनि होकर वनवासी बन जाऊँ। एतदर्थ उन्होंने मेरे काका रुद्रदत्त को मेरे साथ लगा दिया। मेरे काका रुद्रदत्त अनेक विषयों में आसक्त थे, सातों व्यसनों में पारंगत थे, कामीजनों की समस्त कलाओं में निपुण थे। दिन-रात नृत्यांगनाओं की महफिल में जमे रहते थे।

इसी चम्पानगरी में एक कलिंग सेना नाम की वेश्या थी जो समस्त वैश्याओं की शिरोमणि थी। और उसकी वसंतसेना नाम की सर्वांग सुन्दर नवयौवना पुत्री थी। वसंतसेना नृत्य-गीत आदि कलाओं में कुशल थी।

एकदिन वसन्तसेना का नृत्य होनेवाला था। काका के कहने से मैं भी काका के साथ नृत्यमण्डप में बैठा था। वह सुइयों की नोकों पर नृत्य करनेवाली थी; अतः उन पर सुगंधित फूलों की बोड़ियाँ बिखेर कर नृत्य प्रारंभ किया। गीत के प्रभाव से सब बोड़ियाँ खिल उठीं। मैं जानता था कि पुष्पों के खिलने में कौनसा राग निमित्त होता है; इसलिए मैंने उसे 'मालाकार' नामक राग का संकेत पहले ही कर दिया। सूचिनृत्य के बाद उसने अंगुष्ठ नृत्य किया, उसका भी मुझे ज्ञान था। उसके लिए मैंने 'नापित' राग का संकेत कर दिया। इसी तरह उसने और भी अनेक नृत्य किए, उन सबके रागों का भी मुझे थोड़ा ज्ञान होने से मैं उसे संकेत करता रहा। इससे वह मेरे नृत्यकला के राग-रागनी सम्बन्धी ज्ञान से प्रभावित होकर मेरे रूप और गुणों पर रीझ गई। उस समय तो मैं वापिस घर आ गया; परंतु उसने अपनी माँ से जाकर यह कह दिया कि 'मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती; जबकि मैंने उसमें कोई रुचि नहीं ली।

वसंतसेना की माँ ने बेटी की व्यथा देखकर मुझे उससे मिलाने के लिए मेरे काका रुद्रदत्त को मान-सम्मान देकर राजी कर लिया। यद्यपि मुझे वैश्याओं के नृत्य-गीत में बिलकुल भी आकर्षण व रुचि नहीं थी; किन्तु बचपन में अनेक कलाओं के साथ गीत-संगीत कला का भी मुझे ज्ञान मिला था; इसकारण मुझे किस नृत्य में कौन-सी राग-रागनी चलती है, मुझे इसका ज्ञान पूर्व से ही था। इसकारण उत्साह में आकर मैंने नृत्यमण्डप में नृत्य में बजाये जाने वाले राग-रागनी के संकेत कर दिये। मुझे क्या पता था कि इसका यह परिणाम होगा।

पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार एक दिन काका रुद्रदत्त ने मार्ग में जाते समय मुझे वसंतसेना के घर ले जाने के लिए उस नृत्यांगना की गली में मेरे आगे-पीछे दो उन्मत्त हाथियों को लगा दिया प्राणों की सुरक्षा पाने के लिए न चाहने पर भी मुझे उस वैश्या के घर में प्रविष्ट होना पड़ा।

घर के अन्दर पहुँचते ही पहले से तैयार बैठी बसंतसेना की माँ कलिंग सेना ने हम दोनों का खूब स्वागत किया। फिर पूर्व नियोजित योजना के अनुसार मेरे काका रुद्रदत्त और कलिंग सेना ने जुआ खेलना प्रारंभ किया। जुआ में मेरे काका रुद्रदत्त का उसने दुपट्टा तक जीत लिया। तब मुझसे न रहा गया और मेरे काका को हटाकर मैं स्वयं जुआ खेलने को उद्यत हुआ तो कलिंगसेना की जगह उसकी बेटी वसंतसेना आ पहुँची; क्योंकि मुझे खेलता देख उससे भी नहीं रहा गया। फिर हम दोनों बहुत देर तक जुआ खेलने में आसक्त रहे। इसी बीच मुझे प्यास लगी तो उसने बुद्धि को मोहित करने वाली वस्तु से सुवासित ठण्डा पानी मुझे पिला दिया। उसके प्रति बुद्धि विमोहित हो जाने से जब मेरा अनुराग उस पर बढ़ गया, तब उसकी माता ने मौका देख मुझे उसका हाथ पकड़ा दिया। तत्पश्चात् मैं उसमें इतना आसक्त हो गया कि घर की सुध-बुध खोकर उसके घर बारह वर्ष रहा। इस बीच में मैंने अपने माता-पिता तथा प्रिय स्त्री मित्रवती को भी बिलकुल भुला दिया, फिर अन्य कार्यों की तो बात ही क्या ?

वृद्धजनों की सेवा से पहले जो मेरे गुणों में वृद्धि हुई थी, वे उस तरुणी में विषयासक्ति से उत्पन्न हुए दोषों के कारण सब धूल धूसरित हो गये, सब मिट्टी में मिल गये। मेरे पिता सोलह करोड़ दीनारों के धनी थे। वह सब धन धीरे-धीरे वसंतसेना के घर आ गया और जब मेरी पत्नी मित्रवती के आभूषण भी आने लगे तब यह देख उस सलाह देने में चतुर वसंतसेना की माँ कलिंगसेना अपनी बेटी से बोली ह्न हे बेटी ! मैं तेरे हित की बात कहती हूँ, तू ध्यान से सुन ! जो मनुष्य गुरुजनों के वचनामृतरूप मंत्र का सदा अभ्यास करता है, अनर्थरूपी ग्रह उससे सदा दूर रहते हैं। तू अपनी आजीविका की इस जघन्यवृत्ति को तो भलीभाँति जानती ही है कि धनवान लोग ही हमारे प्रिय होते हैं। अपने धंधे में जिसका धन हमने पूरा खींच लिया हो, अब वह ईख के छिलके के समान छोड़ने योग्य होता है। आज चारुदत्त की भार्या ने अपने शरीर के आभूषण उतार कर भेजे थे, सो उसे देख मैंने करुणा करके वे आभूषण वापिस कर दिए हैं; अतः अब सारहीन (निर्धन) चारुदत्त का साथ छोड़ और नई रसीली ईख के समान किसी दूसरे धनवान मनुष्य का उपभोग कर !

कलिंगसेना की बातें सुनकर बसंतसेना को इतना अधिक दुःख हुआ, मानों उसके कानों में कीलें ठोक दिए हों। उसने माता से कहा ह्न ''माँ ! तूने यह क्या कहा? कुमारकाल से जिसे अपनाया है, दिल से चाहा है, स्नेह दिया; चिरकाल तक जिसके साथ जीवन समर्पित किया, उसको अब मैं छोड़कर साक्षात् धन कुबेर को भी स्वीकार नहीं कर सकती। फिर दूसरे धनाढ्य की तो बात ही क्या है? अधिक क्या कहूँ? प्राण जाने की कीमत पर भी मैं चारुदत्त को नहीं छोड़ सकती। हे माँ ! तुझे यदि मेरा जीवन प्रिय है तो पुनः ऐसे वचन नहीं कहना। अरे! उसके घर से आये करोड़ों दीनारों से तेरा घर भर गया फिर भी तू उसे छोड़ने को कहती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती हैं।' पर मैं तुझे ऐसा नहीं मानती थी। तेरी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।

हे माता! जो अनेक कलाओं का पारगामी है, अत्यन्त रूपवान् है, समीचीन धर्म का ज्ञाता और पालन करने वाला है, त्यागी है, उदार है, उस चारुदत्त का त्याग मैं कैसे कर सकती हूँ।''

चारुदत्त ने आगे कहा ह्न इसप्रकार वसन्तसेना का विचार सुनकर उसकी माँ उसको मुझमें अति आसक्त जानकर उससमय तो कुछ नहीं कह सकी; अतः उसी की हाँ में हाँ मिलाती रही; किन्तु मन में हम दोनों को अलग-अलग करने का उपाय भी सोचती रही।

हम दोनों उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते ह्न हर समय साथ-साथ रहते थे; इसकारण उसे हमें अलग-अलग करने का, हमारा वियोग करने का अवसर नहीं मिलता था। एक दिन उसने किसी तंत्र/टोटका द्वारा हम दोनों को गहरी निद्रा में निमग्न करके मुझे घर से बाहर निकाल कर नाली में पटकवा दिया। निद्रा भंग होने पर जब मैंने स्वयं को नाली में पड़ा पाया तो मैं उसकी माँ की करामात समझकर अपने घर चला गया। मेरे पिता तब तक मुनि दीक्षा ले चुके थे। इसकारण मेरी माता और पत्नी दोनों बहुत दुःखी थे। वे बिलख-बिलख कर रोने लगीं। उन्हें देख मैं भी दुःखी हो गया।

घर की आर्थिक स्थिति खराब तो हो ही चुकी थी; अतः माँ और पत्नी को आश्वस्त करके एवं धैर्य बँधाकर मैं मामा के साथ व्यापार हेतु देशान्तर गया। वहाँ भाग्य की प्रतिकूलता के कारण मैंने जो पत्नी के आभूषण बेचकर उस पूँजी से कपास खरीदा था, उसमें आग लग गई। मैंने हिम्मत नहीं हारी, मामा को वहीं छोड़कर घोड़ा पर सवार होकर पूर्वदिशा की ओर आगे बढ़ा तो रास्ते में घोड़ा मर गया।

वस्तुतः जब तक भाग्य साथ नहीं देता और पाप का प्रबल उदय चल रहा हो तो उसका पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता। आगम में ठीक ही कहा है किसी भी कार्य में जबतक भली होनहार न हो तब तक कार्य में सफलता नहीं मिलती।

उसके बाद मैं पैदल चलकर प्रियंगुनगर में पहुँचा। उस समय वहाँ मेरे पिता के मित्र सुरेन्द्रदत्त सेठ रहते थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया और बड़े आराम में रखा। कुछ दिन बाद मैं वहाँ से व्यापार के लिए ही समुद्र यात्रा पर गया सो छह बार मेरा जलजहाज फट गया। फिर अन्त में जब मेरे भाग्य ने कुछ साथ दिया, कुछ पुण्य का उदय ऐसा आया कि किसी तरह मैं आठ करोड़ रुपया कमा कर घर लौट रहा था कि फिर भी जहाज फट गया और सारा धन समुद्र में डूब गया। **(क्रमशः)**

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

13

मैं मुक्त ही हूँ, राग और उसके संबन्ध से मुझमें बन्धपना मुझमें है ही नहीं। समयसार की 14 वीं गाथा में कहा है कि – जो आत्मा को अबद्धस्पृष्टादि भावों रूप अर्थात् मुक्तस्वरूप ही देखता है – अनुभवता है, उसे शुद्धनय जानना। कर्म तो परवस्तु है, उसके साथ तो जीव का परमार्थत: संबन्ध है ही नहीं; किन्तु रागादि विभावों के साथ भी वास्तव में संबन्ध नहीं है। आत्मा तो रागादि के संबन्ध रहित अबन्ध वस्तु है। अबन्ध कहो या मुक्त कहो ... अहा ! दृष्टि ने जब द्रव्य को लक्ष्य में लिया तब 'मैं मुक्त ही हूँ' – ऐसा अनुभव हुआ।

भाई ! तू अपने स्वभाव में एकाग्र हो न ! समस्त लोक में तुझसे विशेष और क्या हो ? तू ही पूर्ण शुद्ध परमेश्वर है, सबसे अधिक है। अपने हित के मार्ग पर तू अकेला जा सकता है। तेरा मार्ग तुझसे अनजाना नहीं है। मुक्ति में तू अकेला जा सकता है। अभी तक जो जीव मोक्ष में गये वे सब अपने स्वसंवेदन से आत्मा को जानकर ही मोक्ष में गये है।

श्री नियमसार कलश 176 में कहते हैं कि आत्मा निरन्तर सुलभ है ... अहा ! आत्मा वर्तमान में निरन्तर सुलभ है, उसका तात्पर्य यह है कि आत्मा वर्तमान में ही है, उसका वर्तमान में ही आश्रय ले ! भूतकाल में था और भविष्य में भी रहेगा – इसप्रकार त्रिकाल लेने से उसमें काल की अपेक्षा आती है; इसलिये वर्तमान में ही त्रैकालिक पूर्णानन्द का नाथ विद्यमान है, उसका वर्तमान में ही आश्रय ले – ऐसा कहते हैं।

विकल्प सहित साधारण महिमा आये उसे महिमा नहीं कहा जाता। वास्तव में अभी अंतरंग रुचि नहीं है। यदि अंतरंग में रुचि हो तो वीर्य उल्लसित होना चाहिए। सामान्य धारणा और माहात्म्य तो अनन्तबार आये; परन्तु सचमुच यथार्थ माहात्म्य आना चाहिये यही तो बाकी रह गया है न ! पहले स्वभाव का माहात्म्य आता है, फिर उसकी उग्रता होने पर एकाग्रता होती है।

ज्ञातृत्व ... ज्ञातृत्व ... चैतन्य प्रकाश का पुंज 'मैं तो ज्ञायक हूँ' इसप्रकार पहले ऊपरी भाव से तो निर्णय कर ! फिर गहराई से निर्णय होगा। विकल्प से अंतर में विचार कर कि यह शरीर तो जड़-मिट्टी है और पुण्य-पाप के भाव विकार हैं। ऐसा विचार करके फिर गहराई से उसका निर्णय कर। किसी भी प्रकार से उस मार्ग पर जा ! शुभाशुभ भावों से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास कर ! ज्ञाता का ज्ञातारूप से अभ्यास कर ! यदि ऐसा अभ्यास हो गया तो सब हो गया – सब आ गया।

पर की तो क्या बात, यहाँ तो राग का भी अधिकार नहीं है। जो राग का अधिकारी होता है, वह द्रव्य का अधिकारी नहीं है; जो शुभाशुभ भावों का स्वामी है, वह आत्मा का स्वामी नहीं हो सकता।

निहालभाई 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश में' पहले कहते हैं कि विवेक को एक बाजू में रखो और बाद में कहा कि विवेक चाहिये । तात्पर्य यह हुआ कि पर्याय को अलग रखना चाहिए पर्याय पर जोर नहीं होना चाहिए, बल्कि उसकी खान पर अर्थात् द्रव्य पर जोर होना चाहिए। सम्यग्दृष्टि को स्वच्छन्दी राग नहीं होता, उसके योग्य – उसकी योग्यतानुसार होता है; परन्तु उसका जोर पर्याय पर न होकर उसकी खान (द्रव्य)पर होता है।

श्री समयसार की 142 वीं गाथा की टीका में आये हुए 70 वें कलश के भावार्थ में कहा है कि – इस ग्रन्थ में प्रारंभ से ही व्यवहारनय को गौण करके तथा शुद्धनय को मुख्य करके कथन किया गया है। ' मैं बद्ध हूँ' आदि व्यवहारनय का तो निषेध करते ही आये हैं; परन्तु मैं अबद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, शुद्ध हूँ – ऐसे जो निश्चयनय के विकल्प उठते हैं, उनका भी हम निषेध करते हैं; क्यों कि स्वरूप में प्रविष्ट होने के लिये वे कार्यकारी नहीं होते। ऐसे विकल्पों तक आया; परन्तु ' उससे क्या ?' उसमें तेरे आत्मा को क्या लाभ हुआ ? जब अंतर स्वरूप में प्रवेश करके आनन्द के नाथ का अनुभव करता है, तब वे सभी विकल्प छूट जाते हैं।

मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, विभाव से भिन्न मैं तो ज्ञायक प्रभु हूँ, अनंत विभूति से परिपूर्ण हूँ, ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ – इसप्रकार अंतर में सच्ची आत्मप्रतीति करे तो उस अन्तर्मुखता के बल से निर्विकल्पता हो, विकल्प छूटें और अतीन्द्रिय ज्ञानन्दस्वरूप स्वनुभूति प्राप्त हो। धर्मी जीव को स्वानुभूति होने के पश्चात् भी राग तो आता है; परन्तु वह उसका मात्र ज्ञाता है, स्वामी नहीं है, उसे अपना कर्तव्य नहीं मानता। बात बहुत सूक्ष्म है। अनन्तबार इस जीव ने इस श्रावक कुल में जन्म लिया और द्रव्यलिंगी श्रावक हुआ; परन्तु अपना जो रागरहित, पूर्णानन्द से भरपूर त्रैकालिक शुद्धस्वरूप है, उस पर कभी दृष्टि नहीं की । अन्तर्मुख होकर उसका कभी अनुभव नहीं किया।

बन्ध-मोक्ष और उन दोनों के मार्ग की पर्याय सब कुछ नाशवान है; इसलिये त्रैकालिक को निश्चय आत्मा कहा है। यहाँ तक कि केवलज्ञान भी पर्याय है, उसे द्रव्य करता नहीं अथवा वह पर्याय द्रव्य में नहीं है। मुनिपना, केवलज्ञान, या सिद्धपद, वह तो पर्याय है, क्षणिक है और ध्रुव ज्ञायक है, वह त्रैकालिक है – ऐसा जो एकरूप सदृश ध्रुव है कि जिसमें द्रव्यलिंग, भावलिंग, केवलज्ञान या सिद्धत्व नहीं है, उसे निश्चय आत्मा कहते हैं।

नियमसार में व्यवहारनय की बतलाते हुये कहते हैं कि सुबुद्धियों को और कुबुद्धियों को पहले से ही शुद्धता है, उनमें भेद किस नय से जानूँ ? व्यवहारनय की तो कोई गिनती ही नहीं है। तब प्रभु ! तुझमें और सिद्ध में किस नय से अंतर मानूँ ? यह संसारी और वह सिद्ध – ऐसा भेद किस प्रकार करुँ ? किस नय से करुँ ? व्यवहार नय से ... किन्तु व्यवहारनय की तो किसी में गिनती ही नहीं है।

नय श्रुतज्ञान प्रमाण का अंश है। प्रमाणज्ञान को प्रमाणपना तब और तभी प्राप्त होता है कि भीतर दृष्टि में विभाव तथा पर्याय के भेदों से रहित शुद्धात्मरूप ध्रुव की श्रद्धा का-अवलम्बन का जोर सतत प्रवर्तमान हो। ज्ञानी को ध्रुवस्वभाव के अवलम्बन का बल सदैव प्रवर्तमान होने से उसका ज्ञान सम्यक्प्रमाण है और उसी को क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय तथा निश्चयनयादि द्वारा वर्णित धर्मों का सच्चा ज्ञान होता है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को नहीं होता; क्योंकि उसे शुद्धात्म द्रव्यस्वरूप ध्रुव स्वभाव की प्रतीति न होने से उसका ज्ञान अप्रमाण है – मिथ्या है।

महावीर जयन्ती सम्पन्न

1. वसमतनगर (हिंगोली, महा.): यहाँ भगवान महावीर जयन्ती के अवसर पर दिनांक 15 अप्रैल 03 को पण्डित श्री प्रशांत काले शास्त्री शिरडशहापुर का रात्रि में भगवान महावीर के जीवन पर विशेष व्याख्यान हुआ, जिससे समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई।

2. जयपुर (जनता कॉलोनी) : यहाँ दिगम्बर जैन मंदिर में पण्डित राजेशकुमारजी शास्त्री के निर्देशन में श्रीमती चन्द्रा जैन के सहयोग से णमोकार मंत्र का जाप किया गया। साथ ही इस अवसर पर पाठशाला के बालकों को पुरस्कार वितरित कर प्रोत्साहित किया गया।

3. मौ (भिण्ड, म.प्र.): यहाँ भगवान महावीर जयंती के पावन प्रसंग पर स्थानीय युवा संगठन महावीर मित्र मण्डल द्वारा 12 अप्रैल से 15 अप्रैल तक रत्नत्रय मण्डल विधान का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर ब्र. पण्डित केशरीचंदजी 'धवल' के प्रवचन हुए। दिनांक 15 अप्रैल को प्रात: श्रीजी यात्रा एवं सायं पालना-झूलन आकर्षण का केन्द्र रहा, जिसका उद्घाटन चौधरी परिवार ने किया तथा भगवान के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती एवं श्री रमेशचंदजी सर्राफ को मिला।

कार्यक्रम के अंतर्गत निबन्ध-प्रतियोगिता (विषय-धर्मतीर्थ एवं दानतीर्थ) में क्रमश: प्रथम श्रीमती सुलेखा जैन, द्वितीय अनुभव जैन एवं तृतीय सोनल जैन व अंकिता जैन को पुरस्कृत किया गया।

विधि-विधान के कार्य पण्डित पवनकुमारजी शास्त्री मौ द्वारा सम्पन्न कराये गये। सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी शास्त्री के निर्देशन एवं संचालन में सम्पन्न हुये। **- अंशुल जैन, प्रचारमंत्री**

अनदेखा सच (शाकाहारियों के लिए एक चेतावनी)

मैं एक विषय की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा, जो है हमारा 'आहार'। उक्ति है कि 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन' इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऋषि-मुनियों ने शाकाहार पद्धति को अपनाया था और आज के इस वैज्ञानिक युग में शोधों एवं प्रशिक्षणों से भी शाकाहार की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है; परन्तु कुछ तो शान शौकत एवं दिखावे के कारण तथा कुछ मन बहलाने के कारण लोग ऐसे होटलों में खाने में कोई परहेज नहीं करते जहाँ दोनों ही प्रकार के खाने की व्यवस्था हो; क्योंकि ऐसे होटल अपने प्रदर्शन एवं प्रियता के कारण आकर्षक दिखते हैं जहाँ पर जाना लोग प्रतिष्ठापूर्ण भी समझते हैं; परन्तु सूक्ष्मता से देखा जाये तो वहाँ उपयोग में आनेवाले बर्तनों का लापरवाही से प्रयोग, सीमित स्थान की मजबूरी तथा **होटल व्यवसाय को धर्म का नहीं अपितु मुनाफे का जरिया** समझने के कारण ऐसे होटलों में मिलनेवाला शाकाहारी भोजन भी मांसाहारी भोजन का ही दूसरा रूप होता है ; अत: यदि शाकाहार का प्रयोग करना हो तो हमें शुद्ध शाकाहारी होटलों में ही जाना चाहिये। इस बात को हमारे समुदाय के लोग जितनी जल्दी समझ लें व अपना लें वही उत्तम होगा। **- निर्मल कासलीवाल**

नोट - निवेदन है कि अपने आप को शाकाहारी माननेवाले लोग या तो होटल में जावें ही नहीं तथा यदि किसी कारणवश जाना पड़े तो पहले यह निश्चित कर लें कि इस होटल में कहीं मांसाहार का प्रयोग तो नहीं होता है।

गुरुदेव का भावभीना स्मरण

जबलपुर (म. प्र.): बड़ा फुहारा स्थित श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की जन्मजयन्ती धूमधाम से मनाई गई। द्विदिवसीय कार्यक्रम के प्रथम दिन श्री मनोज जैन के संयोजन में 'गुरुदेव और उनसे प्राप्त निधियाँ' विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसमें विभिन्न वक्ताओं के सारगर्भित विचारों के साथ-साथ मुख्य वक्ता पण्डित ज्ञानचंदजी जैन ने अपने अनुभव सुनाते हुए उनसे प्राप्त देन को सारगर्भित भावपूर्ण निधियों में व्यक्त किया। सायंकालीन सभा में पण्डित विरागजी शास्त्री का गुरुदेव विषयक व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होनें गुरुदेव के प्रेरक प्रसंगों से आदर्श शिक्षा लेने का आह्वान किया।

द्वितीय दिन प्रात:कालीन दैनिक पूजन के पश्चात् फैडरेशन के अध्यक्ष पण्डित विराग शास्त्री के निर्देशन में नवगठित फैडरेशन के सदस्यों द्वारा मौन नाटिका **ये है क्रान्ति गुरुदेव की** का सफल व प्रभावी मंचन हुआ। नाटक की प्रभावी प्रस्तुति ने गुरुदेव को जीवंत कर दिया। साथ ही श्रीमती स्मिता अरहंत जैन के निर्देशन में पाठशाला के बालक-बालिकाओं द्वारा **गुरुदेव के परिवर्तन** पर नाटक प्रस्तुत किया गया। **- अभिषेक जैन**

अभिनव निबन्ध प्रतियोगिता का परिणाम

मौ (भिण्ड, म.प्र.): अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा मौ, जिला-भिण्ड द्वारा आयोजित अभिनव निबन्ध प्रतियोगिता **जैनत्व की पहचान खोते समाज के प्रति हमारा दायित्व** विषय पर आयोजित की गई थी। जिसमें देश के विभिन्न भागों से कुल 56 प्रतियाँ प्राप्त हुईं। प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल श्री रामसेवकजी (ए. डी. आई.) मौ, श्री नितुलकुमार शास्त्री जयपुर, श्रीमती अंजली जैन मौ द्वारा प्रतियों की जाँच की गई एवं उनके द्वारा ही परिणाम घोषित किये गये।

प्रतियोगिता में प्रथमस्थान श्री सुरेन्द्रकुमार जैन उज्जैन, द्वितीयस्थान श्री प्रकाशचंद रतनलाल पहाड़िया इचलकरनजी एवं तृतीयस्थान अरिहंत सांघेलिय पाटन ने प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त तीन सांत्वना पुरस्कार भी दिये गये। सभी प्रतियोगियों को प्रमाणपत्र देकर सम्मानित किया। साथ ही सभी विजेताओं को प्रमाणपत्र एवं बधाई पत्र भेजे जा रहे हैं।

- शुद्धात्मप्रकाशजी शास्त्री, संयोजक

शिक्षण शिविर एवं पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन

आरौन (गुना, म.प्र.): यहाँ श्री महावीर जिनालय की वर्षगांठ के अवसर पर अ.भा. जैन युवा फैडरेशन शाखा आरौन द्वारा दिनांक 13 से 21 अप्रैल 03 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर आध्यात्मप्रवक्ता विदुषी बाल ब्र. कल्पनाबेन जयपुर द्वारा प्रतिदिन प्रात: छहढाला, दोपहर में निश्चय-व्यवहार एवं रात्रि में समाधिमरण विषयों पर कक्षायें ली गईं, जिसका उपस्थित समग्र समाज ने लाभ लिया। **- पवन पंचरत्न**

तत्त्वचर्चा

समयसार का सार 67

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

जरा विचार तो करें कि एक पिंजरा है और उसमें तीन दिन का भूखा एक शेर बंद है। बगल में एक दूसरा पिंजरा है; उसमें एक बकरा बंद है, उसमें उसके खाने–पीने का बढ़िया इंतजाम है।

दोनों के बीच में एक काँच की दीवार है, वह काँच इतना निर्मल है कि दिखता ही नहीं कि यहाँ कुछ है भी या नहीं, लेकिन वह काँच वज्र के समान मजबूत है, दुनिया की कोई ताकत उसे तोड़ नहीं सकती।

इसलिए बकरे को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि शेर उस काँच को तोड़कर बकरे के पास नहीं जा सकता।

बकरा दिन–प्रतिदिन दुबला होता जा रहा है, शेर को देखकर उसकी जान सूखती है, खाने में मन नहीं लगता है; क्योंकि दीवार तो उसे दिखती नहीं है और उसे लगता है कि शेर ने अभी आक्रमण किया तथा एक क्षण में मुझे खा जायेगा।

बकरा को वास्तविक खतरा बिल्कुल नहीं है, खतरा उसके अज्ञान में है, उसकी इस मिथ्या मान्यता में है कि शेर मुझे खा जायेगा; पर शेर तो उसे खा ही नहीं सकता, क्योंकि दोनों के बीच में वज्र की दीवार है। वह शेर टकरा–टकरा के स्वयं चोटग्रस्त हो जायेगा; लेकिन वह बकरे तक पहुँच नहीं सकता है। फिर भी वह बकरा खाये–पिये बिना तो चार दिन में मर जायेगा पर यदि हृदय कमजोर हुआ तो तत्काल भी मर सकता है।

यहाँ प्रश्न है कि उस बकरे को किसने मारा ? शेर ने या बकरे के अज्ञान ने, उसकी मिथ्या मान्यता ने ?

इसीप्रकार दो द्रव्यों के बीच में वज्र की दीवार है। इसकारण वे पूर्ण सुरक्षित हैं। जिसका जो कुछ होगा, वह स्वयं उसके कारण ही होगा, किसी दूसरे के कारण कुछ भी होनेवाला नहीं है, लेकिन क्या करें ? ये बात अज्ञानी को पता नहीं है।

एक कुत्ता वकील और पण्डित के ऊपर भौंकने लगा तो पण्डित भागने लगा। उसे भागता देखकर वकील साहब कहते हैं कि क्यों भागते हो ? भारत में ये कानून है कि यदि उसने आपको घायल कर दिया तो उसे गोली से उड़ा दिया जायेगा, फाँसी की सजा होगी, म्यूनिसिपल्टी वाले पकड़ के ले जायेंगे। पण्डितजी ने उत्तर दिया कि यह बात मुझे और आपको तो मालूम है; किन्तु उस कुत्ते को मालूम नहीं है न ? बाद में उसका जो होगा सो होगा, पर वह अभी तो हमें काट ही सकता है।

इसीप्रकार अज्ञानी को यह पता नहीं है कि एक द्रव्य दूसरे का कुछ कर ही नहीं सकता; अतः व्यर्थ ही भयाक्रान्त रहता है।

ज्ञानी सात भय से रहित होता है, इसलिए उसे बंध भी नहीं है और अज्ञानी निरन्तर भयाक्रान्त रहते हैं। यह अशुद्धता उसके उपादान की है और यह अज्ञान भी उसके उपादान में है और यही बंध का कारण है।

इसी मर्म को स्पष्ट करनेवाली 247 से 253 तक की गाथाएँ बंधाधिकार की प्राण हैं, जो कि निम्न हैं –

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।247।।
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं।।248।।
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कदं तेहिं।।249।।
जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।250।।
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवदं कदं तेसिं।।251।।
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं।।252।।
जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।253।।

(हरिगीत)

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन।।247।।
निज आयु क्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं।।248।।
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं।।249।।
मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन।।250।।
सब आयु से जीवित रहें – यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किसतरह जब आयु दे सकते नहीं।।251।।
सब आयु से जीवित रहें यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं।।252।।
मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो।।253।।

उक्त गाथाओं में आचार्यदेव ने उक्त मान्यता वालों को तीन–तीन बार महान उपाधि दी है कि सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो – ऐसा माननेवाला मूर्ख है, अज्ञानी है और ज्ञानी तो इससे विपरीत है।

इन सात गाथाओं में चार–चार बार यह बात कही है कि – यह बात जिनेन्द्र भगवान ने कही है। बातें तो बहुत होती हैं, लेकिन बातें बातों से स्वीकार नहीं होतीं; कहनेवाले के वजन से स्वीकार होती हैं।

ये इतनी साधारण बात नहीं है कि चपरासी कहे और हम मान लें। यदि वह चपरासी कहे कि आज साहब नहीं हैं, आप कल आना। तो क्या हम मान लेंगे ? लेकिन चपरासी ने यह कहा – कि आपका काम नहीं होगा। आप चले जाओ। तो हम कहेंगे – हम तेरे से कहने से नहीं, यह हम साहब के मुख से सुनना चाहते हैं। अब यदि साहब भी मना करें तो कहेंगे कि

साहब मैं और ऊपर जाऊँगा, क्योंकि इस बात में इतना वजन नहीं है कि मैं आपकी मान लूँ। ऊपर वाले यह कह देंगे तो मैं यह बात मान लूँगा।

कोई जीव किसी को मारता और बचाता नहीं है – ये बात इतनी वजनदार है कि पण्डित हुकमचन्द तो क्या, आचार्य कुन्दकुन्द भी कहें तो लोग माननेवाले नहीं हैं। यह बात कुन्दकुन्दाचार्य जानते थे; इसलिए उन्होंने बार–बार यह कहा – यह बात मेरी कही हुई नहीं है। यह बात तीर्थंकर भगवान ने समवशरण में बैठकर सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, चार ज्ञान के धारी गणधरदेव की उपस्थिति में भरी सभा समवशरण में कही थी।

गाथा नं. 248 में कहा कि आयु के क्षय से जीवों का मरण होता है – यह बात जिनेन्द्र भगवान ने कही है, तुम किसी की आयु तो हरते नहीं हो, तो कैसे कहते हो, कि मैंने उसे मारा ?

गाथा नं. 249 में कहा कि – जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है – ऐसा जिनवरदेव ने कहा है। पर जीव तेरे आयुकर्म को तो हरते नहीं हैं; फिर उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ?

जिसप्रकार उक्त कथन मरण के बारे में किया; वही बात जीवन के बारे में भी समझना।

इसके बाद गाथा नं. 250 में कहा कि जो यह मानता है कि मैं इन्हें जिलाता हूँ अथवा दूसरों की सत्ता के कारण मैं जीवित रहता हूँ; वह मूढ़ है, अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है अर्थात् ऐसा नहीं मानता है, वह ज्ञानी है।

फिर गाथा नं. 251 में कहा – जिन्हें तीन लोक और तीन काल के पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्य–गुण–पर्यायों के साथ प्रतिसमय हाथ पर रखे हुए आंवले की तरह दिखाई दे रहे हैं; ऐसे सर्वज्ञदेव कहते हैं कि जीव आयुकर्म के उदय से जीता है, तुम किसी को आयु तो देते नहीं हो तो किसी को जिन्दा कैसे रखते हो ?

आगे गाथा नं. 252 में कहा कि जीव आयुकर्म के उदय से जीता है – ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं। पर जीव तुझे आयुकर्म तो देते नहीं हैं, फिर उन्होंने तेरा जीवन कैसे किया ?

जिसप्रकार का कथन जीवन–मरण के संबंध में किया, वैसा ही सुख–दुःख के बारे में भी समझना।

गाथा नं. 254 से 256 तक भी यही स्पष्ट किया गया है कि वह अपने पुण्यकर्म के उदय से सुखी होता है, तुम उसे पुण्य तो दे नहीं सकते हो, वह अपने पापकर्म के उदय से दुःखी होता है, तुम उसे पापकर्म तो दे नहीं सकते हो। इसलिए मैं दूसरों को जीवन–मरण, सुख–दुःख देता हूँ, यह बात मूर्खता भरी है और अज्ञान भरी है।

उक्त सम्पूर्ण कथन यह बात स्पष्ट करने के लिए किया गया है कि जब मैं दूसरों का कुछ करता ही नहीं हूँ, तब उसके जीवन–मरण और सुखी–दुखी होने से मुझे कर्म का बंध कैसे हो सकता है ? मुख्य बात तो यह है कि जो अपराध मेरे से हुआ ही नहीं; उसका बंध मुझे क्यों हो ?

लोक में भी यही न्याय है कि जब किसी का मरण न हो और उसके मारने के अपराध में किसी को फाँसी लगे – यह कैसे हो सकता है ? वकील जज से कहता है कि जिस आदमी के मरने पर तुम उसे फाँसी की सजा दे रहे हो, वह तो जिन्दा है। जब मरण हुआ ही नहीं तो फिर सजा किस बात की।

आचार्यदेव भी वही तर्क यहाँ दे रहे हैं कि जब एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कुछ भला–बुरा, जीवन–मरण करता ही नहीं है तो अन्य जीवों के जीवन–मरण से मुझे बंध क्यों हो? वह तो मरा ही नहीं, यदि मरा भी है, तो भी मेरे कारण नहीं मरा तो मुझे बंध क्यों ?

लोक में भी कहावत है कि 'कौआ के कोसे ढोर नहीं मरते'; क्योंकि यदि कौओं के कोसने से ढोर मर जाते होते तो एक भी ढोर जिन्दा नहीं बचता। कोसनेवाले कौओं की कमी थोड़े ही है।

मैं तो ऐसा भी कहता हूँ कि कौआ के कोसे ढोर नहीं मरते और अम्मा के आशीर्वाद से बेटे पास नहीं होते।

ऐसी कौन–सी माता है, जो अपने बेटों को फर्स्ट–क्लास आने का आशीर्वाद नहीं देती। जब सच्चे दिल से हर माँ भरपूर आशीर्वाद देती है, फिर भी लोग क्यों फैल होते हैं ?

गोल्डमैडलिस्ट जानता है कि अम्मा के आशीर्वाद से कुछ नहीं हुआ। मैंने जो दिन–रात पढ़ाई की है, उसकी वजह से ये कमाल हुआ है; लेकिन व्यवहार की भाषा में ऐसा ही बोला जाता है। ऐसा नहीं कहा जाता है कि तेरे आशीर्वाद से क्या होता है? बोलने की भाषा ऐसी ही है और यह बात अम्मा भी जानती है कि मेरे आशीर्वाद से कुछ नहीं हुआ। इसी का एक छोटा भाई है, वह फैल हो गया और आशीर्वाद तो मैंने उसे भी कम नहीं दिया था।

माताएँ इतना तो पक्षपात करती ही हैं कि कमजोर बच्चे को ज्यादा आशीर्वाद देती हैं; क्योंकि वे जानती हैं कि होशियार बच्चा तो अपने आप ही पास हो जायेगा, उसे आशीर्वाद की जरूरत नहीं है; परन्तु कमजोर बच्चे को सहयोग की आवश्यकता है; अतः उसे भरपूर आशीर्वाद देती हैं, मन्दिर में जाकर भगवान से मन्नतें माँगती है, कहती है कि यदि मेरा बेटा पास हो गया तो छत्र चढ़ाऊँगी, नारियल चढ़ाऊँगी, एक विधान करा दूँगी। मास्टरजी के पास जाकर भी दो पाँच सौ रुपया देकर बेटा को पास कराने की कोशिश करती हैं अर्थात् वह मात्र कोरा आशीर्वाद नहीं देती हैं, बहुत कुछ उठा–पटक करती हैं।

पर जब वह पास नहीं होता है, तब यह भी जानती है कि मेरा आशीर्वाद कितना निरर्थक है, फिर भी आशीर्वाद तो देती ही है; लेकिन यदि वह सचमुच मानने लग जाय कि यह बेटा तो सचमुच मेरे ही आशीर्वाद से पास हुआ है तो सही नहीं है और यदि बेटा भी समझ जाय कि अम्मा के आशीर्वाद से पास हुआ हूँ तो वह भी धोखे में है। यह कहना तो व्यवहार है, व्यवहार की भाषा में ऐसा ही कहा जाता है। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

शिविर एवं विधान सानन्द सम्पन्न

चिन्तामणी पार्श्वनाथ (अहमदाबाद) : यहाँ श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र में दिनांक 1 मई से 6 मई 2003 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं चौसठ ऋद्धि विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तार्किक विद्वान डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी के प्रात: समयसार एवं रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक पर सारगर्भित प्रवचन हुये।

साथ ही पण्डित शैलेषभाई तलोद, पण्डित विक्रांत शहा शास्त्री सोलापुर एवं पण्डित अशोक जैन शास्त्री रायपुर के प्रवचनों का लाभ मिला। पण्डित विवेकजी सिवनी द्वारा बाल कक्षा ली गई। विधि-विधान के कार्य पण्डित रजनीभाई हिम्मतनगर द्वारा सम्पन्न कराये गये।

इस अवसर पर अखिल भारतीय तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के महामंत्री श्री वसंतभाई दोशी मुम्बई का सम्मान किया गया। समस्त कार्यक्रम का आयोजन श्री दिग. जैन रायदेश-गुजरात समाज ने किया।

धर्म प्रभावना

औरंगाबाद (सिडको एन-6): यहाँ पर समाज के विशेष आग्रह पर दिनांक 18 से 25 अप्रैल तक एवं 2 से 3 मई तक ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के दोनों समय गुणस्थान-विवेचन एवं दोपहर में जिनधर्म-प्रवेशिका पर हुए मार्मिक प्रवचनों का लाभ सम्पूर्ण समाज को प्राप्त हुआ।

वैराग्य समाचार

1. बगडीनगर (राजस्थान) निवासी श्री संपतराजजी जुगराजजी जैन का 70 वर्ष की आयु में दिनांक 26 मार्च, 2003 को मुम्बई में देहावसान हो गया है। आप सरल स्वभावी, मृदुभाषी श्रावक थे। अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के आप आजीवन ट्रस्टी रहे।

आपको दादाभाई नौरोजी इंटरनेशनल सोसायटी यू.के. द्वारा समाज सेवा हेतु 'दादाभाई नौरोजी मिलेनीयम पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

आपकी स्मृति में परिवार की ओर से वीतराग-विज्ञान को 251/- रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

2. बड़नगर-उज्जैन निवासी श्रीमती चंद्रावतीबाई काला का 77 वर्ष की आयु में धर्म श्रवण करते हुए निधन हो गया है। आप अत्यन्त म्रदुभाषी, शांतिप्रिय एवं धार्मिक विचारों की महिला थी।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - ऐसी मंगल कामना है। **- प्रबन्ध सम्पादक**

जून माह में आनेवाली 24 तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियाँ

04 जून - भगवान धर्मनाथ का मोक्ष कल्याणक
11 जून - भगवान सुपार्श्वनाथ जन्म एवं तप कल्याणक
16 जून - भगवान ऋषभदेव का गर्भकल्याणक
19 जून - भगवान वासुपूज्य का गर्भकल्याणक
21 जून - भगवान विमलनाथ का मोक्षकल्याणक
24 जून - भगवान नमिनाथ का जन्म एवं तप कल्याणक
नोट - 31 मई को भगवान अजितनाथ का गर्भ कल्याणक है, विगत अंक की अशुद्धि को सुधार लें।

गुरुदेव जीवन-दर्शन पर वी.सी.डी.

अध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के मंगलमय जीवन का दर्शन करानेवाली वीडियो फिल्म (वी.सी.डी.) 'कहान क्रमबद्ध कथा' शीर्षक से पूज्य गुरुदेवश्री के अंतेवासी आत्मार्थी श्री हेमंतभाई गांधी, सोनगढ़ के कुशल निर्देशन में तैयार करने में आयी है, गुजराती भाषा में प्रकाशित तीन घंटे की इस वी.सी.डी. में गुरुदेवश्री का परिवर्तन तक का जीवन दर्शाने में आया है, जो कम्प्यूटर तथा वी.सी.डी प्लेयर पर भी देखा जा सकेगा। तीन वी.सी.डी के सेट का विक्रय मूल्य 25 रुपये रखा गया है। जिस किसी मुमुक्षुभाई को जरूरत हो, वे निम्न पते पर अथवा स्थानीय मुमुक्षु मण्डल से सम्पर्क करें।

- श्री हितेनभाई शेठ,
309, वीणा विहार, सायन (पूर्व), मुम्बई - 400022
फोन - 24015434

हार्दिक बधाई !

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के उपा. वरिष्ठ के विद्यार्थी संभव जैन, नैनधरा ने राज्यस्तर पर आयोजित निबंध प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। निबंध का विषय **शाकाहार-आधुनिक युग में उपयोगिता** रखा गया था।

महाविद्यालय परिवार की ओर से आपको हार्दिक शुभकामनायें।

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) **मई (द्वितीय) 2003**
J.P.C. 3779/**02/2003-05**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, डबल एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन) तथा इतिहास
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127